Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.gisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2024 GISRRJ | Volume 7 | Issue 6 | ISSN : 2582-0095

19वीं शताब्दी में भारतीय महिलाओं का सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सशक्तिकरण

हेमा सिंह
शोधार्थी, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, भारत।

Article Info
Volume 7, Issue 6

Page Number : 52-57

Publication Issue :
November-December-2024

Article History
Accepted : 10 Dec 2024
Published : 20 Dec 2024

भूमिका -19वीं शताब्दी भारतीय समाज में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण काल था। इस दौरान महिलाओं की स्थिति में भी व्यापक बदलाव देखने को मिले। आदर्श पत्नी की परंपरागत अवधारणा को चुनौती दी गई और महिलाओं की भूमिका का विस्तार हुआ। शिक्षा, सामाजिक सुधार और राष्ट्रवाद ने महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित किया। हालांकि, इस प्रक्रिया में उन्हें कई चुनौतियों और विरोधाभासों का सामना करना पड़ा। इस शोधपत्र का उद्देश्य 19वीं शताब्दी में महिलाओं की सामाजिक स्थिति, उनकी चुनौतियों, विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, बाल विवाह, महिला शिक्षा और राष्ट्रवादी आंदोलन में उनकी भागीदारी की समीक्षा करना है। साथ ही, गांधी और नेहरू जैसे नेताओं की महिलाओं के प्रति नीतियों की आलोचनात्मक व्याख्या भी प्रस्तुत की जाएगी।

महत्वपूर्ण शब्द – महिलाएं, सार्वजनिक, राजनीतिक, आर्थिक भागीदारी

महिलाओं की सार्वजनिक क्षेत्र में भागीदारी- 19वीं शताब्दी से पहले, भारतीय समाज में महिलाओं की भूमिका मुख्य रूप से घरेलू कार्यों और पारिवारिक जिम्मेदारियों तक सीमित थी। समाज में महिलाओं की पहचान एक आदर्श गृहिणी, पत्नी और माँ के रूप में ही देखी जाती थी। पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं और पुरुष प्रधान मानसिकता के कारण महिलाओं को घर की चारदीवारी के बाहर सार्वजनिक जीवन में भागीदारी का अवसर बहुत कम मिलता था। लेकिन जैसे-जैसे औपनिवेशिक शासन का प्रभाव बढ़ा और पश्चिमी शिक्षा का प्रसार हुआ, महिलाओं के लिए सामाजिक और सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने के नए अवसर सामने आने लगे। इस परिवर्तन ने विशेष रूप से शिक्षित महिलाओं को प्रेरित किया कि वे सामाजिक सुधार आंदोलनों में भाग लें और अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठाएँ।

औपनिवेशिक काल के दौरान, भारत में समाज सुधारकों और राष्ट्रवादी नेताओं ने महिलाओं की शिक्षा पर बल दिया और उन्हें सार्वजनिक जीवन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर और महादेव गोविंद रानाडे जैसे समाज सुधारकों ने महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने और सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए महत्वपूर्ण कदम

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

उठाए। इसके परिणामस्वरूप महिलाओं को शिक्षा संस्थानों में प्रवेश करने का अवसर मिला। शिक्षा प्राप्त करने के बाद, महिलाओं ने न केवल अपने अधिकारों की समझ विकसित की, बल्कि सामाजिक संगठनों से जुड़कर समाज सुधार के प्रयासों में भी भाग लिया।

महिलाओं ने धीरे-धीरे सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलनों में सक्रिय भूमिका निभानी शुरू की। 19वीं शताब्दी के अंत और 20वीं शताब्दी की शुरुआत में, उन्होंने विधवा पुनर्विवाह, सती प्रथा के उन्मूलन, बाल विवाह की रोकथाम और महिलाओं की शिक्षा जैसी महत्वपूर्ण सामाजिक सुधार गतिविधियों में योगदान दिया। इसके अलावा, नए धार्मिक आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी, जिससे उन्हें अपने अधिकारों और समाज में अपनी स्थिति के प्रति अधिक जागरूक होने का अवसर मिला।

हालांकि, यह सामाजिक परिवर्तन पूरे समाज में समान रूप से नहीं देखा गया। शहरी क्षेत्रों में रहने वाली महिलाओं को शिक्षा और सार्वजनिक जीवन में भाग लेने के अधिक अवसर मिले, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएँ इन सुधारों से काफी हद तक वंचित रहीं। पारंपरिक और रूढ़िवादी सोच के कारण गाँवों में महिलाओं की भूमिका अब भी पारिवारिक जिम्मेदारियों तक सीमित रही। हालांकि कुछ प्रगतिशील विचारधाराओं ने ग्रामीण महिलाओं को भी प्रभावित किया, लेकिन यह प्रक्रिया धीमी और चुनौतियों से भरी रही।

महिलाओं की सार्वजनिक क्षेत्र में भागीदारी को राष्ट्रीय आंदोलन ने भी प्रभावित किया। महात्मा गांधी ने महिलाओं को स्वतंत्रता संग्राम में शामिल होने के लिए प्रेरित किया। सत्याग्रह और असहयोग आंदोलन के दौरान महिलाओं ने नमक सत्याग्रह, विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और अन्य विरोध प्रदर्शनों में बढ़-चढ़कर भाग लिया। उन्होंने अपनी पारंपरिक भूमिकाओं से आगे बढ़कर एक राजनीतिक और सामाजिक नेतृत्व की ओर कदम बढ़ाया।

इस तरह, 19वीं शताब्दी के अंत और 20वीं शताब्दी की शुरुआत में महिलाओं की सार्वजनिक क्षेत्र में भागीदारी में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। शिक्षा, सामाजिक सुधार और राजनीतिक आंदोलनों के माध्यम से महिलाओं को अपनी पहचान बनाने का अवसर मिला। हालाँकि, यह परिवर्तन समाज के सभी वर्गों में समान रूप से नहीं पहुंचा, लेकिन यह महिलाओं की स्थिति में सुधार और लैंगिक समानता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था।

विधवाओं की स्थिति और विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856 - 19वीं शताब्दी में भारतीय समाज में विधवाओं की स्थिति अत्यंत कठिन और दयनीय थी, विशेष रूप से उच्च जातियों में। पति की मृत्यु के बाद, विधवाओं को सामाजिक रूप से अलग-थलग कर दिया जाता था और कठोर परंपराओं का पालन करने के लिए मजबूर किया जाता था। समाज उन्हें अशुभ मानता था और अक्सर उनकी दुर्दशा के लिए उन्हें ही दोषी ठहराया जाता था। उन्हें रंगीन वस्त्र पहनने, आभूषण धारण करने और उत्सवों में भाग लेने से वंचित रखा जाता था। इसके अलावा, विधवाओं को सादा भोजन करने और समाज में एक परित्यक्त जीवन जीने के लिए विवश किया जाता था।

विधवाओं के पुनर्विवाह को सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं थी, जिसके कारण वे विभिन्न प्रकार के शोषण का शिकार होती थीं। कई विधवाओं को परिवार की संपत्ति से वंचित कर दिया जाता था, जबकि कुछ को यौन शोषण का सामना करना पड़ता था। उच्च जाति की युवा विधवाएँ विशेष रूप से इस अत्याचार का शिकार होती थीं, जिन्हें समाज में सम्मानपूर्वक जीवन जीने का कोई अधिकार नहीं दिया जाता था।

1856 में पारित विधवा पुनर्विवाह अधिनियम को समाज सुधारकों द्वारा एक क्रांतिकारी कदम माना गया। ईश्वरचंद्र विद्यासागर जैसे समाज सुधारकों के प्रयासों से यह कानून अस्तित्व में आया, जिसका उद्देश्य विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार देना और उनकी स्थिति में सुधार लाना था। हालाँकि, इस कानून को समाज में व्यापक स्वीकृति नहीं मिली, क्योंकि पारंपरिक विचारधारा वाले लोग इसे हिंदू धर्म के विरुद्ध मानते थे।

ताराबाई शिंदे जैसी प्रगतिशील महिलाओं ने विधवाओं की दुर्दशा के खिलाफ आवाज उठाई और समाज की रूढ़िवादी मान्यताओं को चुनौती दी। उन्होंने विधवाओं के अधिकारों और पुनर्विवाह की आवश्यकता पर बल दिया, जिससे इस विषय पर एक व्यापक बहस छिड़ी। हालांकि, विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित होने के बावजूद, वास्तविक सामाजिक परिवर्तन बहुत धीमी गति से हुआ, और विधवाओं की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार लाने के लिए लंबा संघर्ष करना पड़ा।

महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी और राष्ट्रवाद- भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, लेकिन उन्हें आमतौर पर सहायक भूमिकाओं तक सीमित रखा गया। भले ही उन्होंने आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी की, फिर भी उनकी भूमिका को पारंपरिक दृष्टिकोण से ही परिभाषित किया गया। महात्मा गांधी ने महिलाओं को स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल किया, लेकिन उनके योगदान को आत्म-त्याग, सहनशीलता और अहिंसा के गुणों से जोड़ा। उन्होंने महिलाओं को त्याग और सेवा के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया, जिससे वे संघर्ष का हिस्सा तो बनीं, लेकिन नेतृत्व की भूमिका में बहुत कम जगह मिली। गांधीजी का मानना था कि महिलाओं की स्वाभाविक कोमलता और सहनशीलता आंदोलन के अहिंसक सिद्धांत को मजबूत करेगी।

दूसरी ओर, जवाहरलाल नेहरू ने महिलाओं की भूमिका को एक अलग दृष्टिकोण से देखा। उन्होंने न केवल उनकी राजनीतिक भागीदारी को बढ़ावा दिया, बल्कि उनकी आर्थिक स्वतंत्रता पर भी विशेष जोर दिया। नेहरू का मानना था कि महिलाओं की सशक्तता केवल उनकी राजनीतिक और कानूनी समानता से ही संभव नहीं होगी, बल्कि उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाना भी आवश्यक है। उन्होंने महिलाओं को सामाजिक संस्थाओं, जैसे कि पर्दा प्रथा, अस्पृश्यता और जातिवाद के खिलाफ संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया।

नेहरू ने महिलाओं के लिए समान अधिकारों की वकालत की और उनके सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए तकनीकी और औद्योगिक उन्नति को जरूरी माना। उनका दृष्टिकोण गांधीजी से भिन्न था, क्योंकि वे महिलाओं को केवल राष्ट्रवाद के माध्यम से नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र और समान नागरिक के रूप में देखते थे। हालांकि, स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी उल्लेखनीय थी, फिर भी सामाजिक संरचनाओं में बदलाव धीमा था, और लैंगिक समानता की दिशा में संघर्ष जारी रहा।

बाल विवाह और महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्ष- 19वीं शताब्दी में बाल विवाह भारतीय समाज में एक आम प्रथा थी, जिसे धार्मिक और सामाजिक परंपराओं से जोड़ा जाता था। छोटी उम्र में लड़कियों का विवाह कर देना न केवल उनकी स्वतंत्रता को बाधित करता था, बल्कि उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता था। सामाजिक सुधारकों और महिला संगठनों ने इस प्रथा के खिलाफ आवाज उठाई और इसके उन्मूलन के लिए लगातार संघर्ष किया।

महिला अधिकार कार्यकर्ताओं, जैसे शेरिफा हामिद अली और श्रीमती दीवान ने विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाने की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने इस सामाजिक बुराई को खत्म करने के लिए विभिन्न आंदोलनों का नेतृत्व किया और सरकार पर इस दिशा में कानून बनाने का दबाव डाला। इन प्रयासों का परिणाम 1929 में सारदा अधिनियम के रूप में सामने आया, जिसने विवाह की न्यूनतम आयु 15 वर्ष निर्धारित की। हालांकि, इस कानून को लागू करने में कई चुनौतियाँ आईं, खासकर उन समुदायों से, जिन्होंने इसे अपनी धार्मिक परंपराओं के खिलाफ माना। मुस्लिम समुदाय में इस अधिनियम को लेकर व्यापक विरोध हुआ, जिससे इसके क्रियान्वयन में बाधाएँ उत्पन्न हुईं।

इस दौरान, महिलाओं की शिक्षा, उनके कानूनी अधिकारों और समाज में उनकी स्थिति को लेकर महत्वपूर्ण बहसें हुईं। बाल विवाह के विरोध ने महिलाओं की स्वतंत्रता और सशक्तिकरण के लिए बड़े सुधारों की नींव रखी। धीरे-धीरे, महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य और कानूनी अधिकारों के प्रति जागरूक किया जाने लगा, जिससे समाज में उनके प्रति दृष्टिकोण बदलने लगा। हालांकि यह संघर्ष लंबा और चुनौतीपूर्ण था, लेकिन यह भारतीय महिलाओं के अधिकारों की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम साबित हुआ।

महिला शिक्षा और सामाजिक सुधार आंदोलन – महिलाओं की स्थिति में सुधार का सबसे प्रभावी तरीका शिक्षा है। उस समय महिलाओं को शिक्षा से वंचित रखा जाता था, जिससे वे सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर बनी रहती थीं। लेकिन धीरे-धीरे, समाज सुधारकों और महिला नेताओं ने इस दिशा में प्रयास शुरू किए।

सरला देवी चौधरी और सरोजिनी नायडू जैसी अग्रणी महिलाओं ने महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए संघर्ष किया। उन्होंने शिक्षा को महिलाओं के सशक्तिकरण का माध्यम माना और इसके प्रचार-प्रसार के लिए विभिन्न आंदोलन चलाए। इसी तरह, कॉर्नेलिया सोराबजी ने भी महिला शिक्षा और सामाजिक सुधार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया, जिससे महिलाओं को अपने अधिकारों और सामाजिक न्याय के प्रति जागरूक होने का अवसर मिला।

ब्रिटिश सरकार और भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने भी महिला शिक्षा को बढ़ावा देने की बात की, लेकिन वे इस बात को लेकर सशंकित थे कि शिक्षित महिलाएँ पितृसत्ता को चुनौती देंगी। इसके बावजूद, महिला शिक्षा को बढ़ाने के प्रयास जारी रहे। हालांकि, इस दौरान अधिकांश महिलाएँ अभी भी पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं में बंधी हुई थीं और शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रहीं।

गांधी और महिलाओं की भूमिका – महिलाओं की स्थिति को लेकर गांधीजी के विचारों में कुछ विरोधाभास देखे गए। उन्होंने महिलाओं को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित किया, लेकिन साथ ही उनकी पारंपरिक भूमिकाओं

को बनाए रखने पर भी जोर दिया। गांधीजी ने महिलाओं की सहनशक्ति, आत्म–बलिदान और नैतिक शक्ति को राष्ट्रीय आंदोलन के लिए उपयोगी माना, लेकिन आधुनिक तकनीक, मशीनों और जन्म नियंत्रण जैसे मुद्दों का विरोध किया।

गांधीजी का मानना था कि महिलाओं को समाज और परिवार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए, लेकिन उन्होंने पुरुषों और महिलाओं के कार्यों को समान दृष्टि से नहीं देखा। उनके विचारों में कहीं न कहीं पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण झलकता था, क्योंकि वे महिलाओं को मुख्य रूप से माताओं और पत्नियों के रूप में ही परिभाषित करते थे। उन्होंने महिलाओं को राजनीतिक और सामाजिक आंदोलनों में भाग लेने के लिए प्रेरित किया, लेकिन उनके लिए स्वतंत्र पेशेवर करियर या आर्थिक आत्मनिर्भरता को प्राथमिकता नहीं दी।

हालांकि, गांधीजी ने महिलाओं को स्वतंत्रता संग्राम में शामिल कर उनकी शक्ति को मान्यता दी, जिससे उन्हें सार्वजनिक जीवन में भाग लेने का अवसर मिला। उनके नेतृत्व में कई महिलाओं ने सत्याग्रह और असहयोग आंदोलनों में भाग लिया, जिससे भारतीय समाज में महिलाओं की भूमिका और सशक्तिकरण की दिशा में बदलाव आया।

नेहरू और महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता –जवाहरलाल नेहरू का महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण गांधीजी से भिन्न था। जहां गांधीजी ने महिलाओं की भूमिका को मुख्य रूप से नैतिकता और पारंपरिक मूल्यों से जोड़ा, वहीं नेहरू ने उनकी आर्थिक स्वतंत्रता पर विशेष जोर दिया। उनका मानना था कि जब तक महिलाएं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं होंगी, तब तक समाज में वास्तविक समानता स्थापित नहीं हो सकती। उन्होंने महिलाओं की भागीदारी को केवल सामाजिक और नैतिक दायरे तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्हें आर्थिक क्षेत्र में भी सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रेरित किया।

नेहरू ने महिलाओं के समान राजनीतिक और कानूनी अधिकारों की वकालत की। वे मानते थे कि महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक प्रगति के लिए तकनीकी प्रगति और आधुनिक शिक्षा आवश्यक है। उन्होंने महिलाओं की शिक्षा और रोजगार के अवसर बढ़ाने की आवश्यकता पर बल दिया ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर सकें।

इसके अलावा, नेहरू ने पर्दा प्रथा, अस्पृश्यता और जाति–आधारित भेदभाव जैसी सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया। उन्होंने महिलाओं को सामाजिक अन्याय के खिलाफ लड़ने के लिए प्रेरित किया और इस दिशा में कई सुधारवादी नीतियों को बढ़ावा दिया। उनके विचारों और प्रयासों से महिलाओं को समाज में अधिक स्वतंत्रता और अधिकार प्राप्त हुए, जिससे भारत में महिला सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति हुई।

महिला संगठन और सामाजिक सुधार- महिला संगठनों ने 19वीं और 20वीं शताब्दी में समाज में बदलाव लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन संगठनों ने बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह और महिला शिक्षा जैसे मुद्दों पर जागरूकता बढ़ाने और सुधार लाने के लिए संघर्ष किया। शेरिफा हामिद अली और सरला देवी चौधरी जैसी प्रभावशाली महिलाओं ने महिला अधिकारों की रक्षा और समानता की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

महिला संगठनों ने विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाने के लिए व्यापक स्तर पर अभियान चलाए, जिससे लड़कियों की शिक्षा और उनके समग्र विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके। इन संगठनों ने महिलाओं के कानूनी और सामाजिक अधिकारों के लिए भी आवाज उठाई, जिससे उन्हें समाज में अधिक स्वतंत्रता और समान अवसर मिल सकें।

हालांकि, महिलाओं की स्वतंत्रता को लेकर राष्ट्रवादी नेताओं और सामाजिक सुधारकों के बीच मतभेद थे। कुछ नेताओं ने महिलाओं को पारंपरिक भूमिकाओं तक सीमित रखा, जबकि अन्य ने उनके सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण का समर्थन किया। महिला संगठनों के सतत प्रयासों से महिलाओं की स्थिति में धीरे–धीरे सुधार हुआ और वे सार्वजनिक जीवन में अधिक सक्रिय भूमिका निभाने लगीं।

निष्कर्ष – 19वीं शताब्दी के दौरान भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति में महत्वपूर्ण बदलाव देखने को मिले। सामाजिक सुधार आंदोलनों, महिला संगठनों और राष्ट्रवादी नेताओं के प्रयासों से महिलाओं को शिक्षा और सार्वजनिक जीवन में सीमित अवसर मिलने लगे। हालांकि, यह परिवर्तन व्यापक स्तर पर समान रूप से नहीं हुआ और समाज में गहरे विरोधाभास बने रहे।

महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने और सामाजिक संगठनों में भाग लेने का अवसर तो मिला, लेकिन उनकी भूमिकाएँ अभी भी पारंपरिक दायरे में सीमित रहीं। गांधीजी और नेहरू ने महिलाओं के अधिकारों और सशक्तिकरण की बात की, लेकिन उनकी सोच में भी कुछ सीमाएँ थीं। गांधीजी ने महिलाओं को स्वतंत्रता संग्राम में शामिल किया, लेकिन पारंपरिक मूल्यों के तहत उनकी भूमिका को परिभाषित किया। वहीं, नेहरू ने महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता पर जोर दिया और उनके कानूनी व सामाजिक अधिकारों को सशक्त बनाने की आवश्यकता महसूस की।

महिला संगठनों ने बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह, शिक्षा और नागरिक अधिकारों के लिए संघर्ष किया, जिससे महिलाओं की स्थिति में कुछ सुधार हुआ। हालांकि, सामाजिक और कानूनी ढांचे में व्यापक बदलाव लाने की उनकी क्षमता सीमित रही। 19वीं शताब्दी के अंत तक महिलाओं ने सार्वजनिक जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान बनाना शुरू कर दिया था, लेकिन पूर्ण लैंगिक समानता की दिशा में आगे बढ़ने के लिए अभी भी लंबा संघर्ष शेष था।

संदर्भ सूची-

1. कुमार, राधा, स्त्री संघर्ष का इतिहास, 1800–1990, प्रथम संस्करण 2002
2. फोर्बस्, जेरलडाइन, वुमेन इन मॉडर्न इंडिया, 1998
3. बासु, अपर्णा, द न्यू ब्राह्मण वुमेन, एजुकेशन एंड मॉडर्ननाईजेशन ऑन वेस्टर्न इंडिया, 1820–1920, पेपर प्रेजेंटेड एट सेमिनार, नेहरू मेमोरियल एंड लाइब्रेरी, नई दिल्ली, अप्रैल 1989
4. सरकार, सुमित, मॉडर्न इंडिया, नई दिल्ली,1983
5. मेनन, विशालाक्षी, इंडियन विमेन एंड नेशनलिज्म, 2003
6. थापर, सुरुचि, विमेन इन द इंडियन नेशनल मूवमेंट, 1996
7. रमाबाई, पण्डिता, हाई कॉस्ट हिन्दू विमेन, 1981